आमने-सामने

अन्या से अनन्या तक की यात्रा...
- जद्दनबाई

नग़मा जावेद मलिक

भारत की पहली महिला फ़िल्म निर्माता और संगीतकार जद्दनबाई, मशहूर फ़िल्मी कलाकार नर्गिस की मां, संजयदत्त की नानी ने एक ऐसे माहौल में जन्म लिया, जिन्हें कोठेवालियां कहा जाता है। एक कोठे वाली दूसरी कोठे वाली को जन्म देती है, लेकिन जद्दनबाई एक अलग दिल-दिमाग लेकर आयी थीं। उन्होंने बहुत छोटी उम्र में अपने बारे में सोचा और अपनी दुनिया खुद बनाई।

उनका जन्म कब हुआ इस बारे में प्रामाणिक जानकारी नहीं है क्योंकि उनकी पैदाइश उस समाज में हुई जहां जन्म और शादी के रिकार्ड नहीं रखे जाते थे। जद्दनबाई के बुज़ुर्गों का कहना था कि उनका जन्म 1909 में हुआ। यह वह सामंती ज़माना था जब कोठे सभ्यता और संस्कृति के केन्द्र समझे जाते थे, यहां शहज़ादे, राजकुमार और ज़मीदारों के बेटे रहन-सहन का सलीका और बोल-चाल के अदब सीखने आते थे। ये तालीम व तरबियत के मदरसे थे। इन कोठों पर गाने वाली और नाचने वाली लड़कियां भी होती थीं, जो बेहतरीन उर्दू गज़लें सुनाकर उनका मनोरंजन भी करती थीं। अपने उन्नत रूप में ये कोठे संगीतकारों, नृत्यकारों और कवियों को सृजन का एक बेहतरीन माहौल प्रदान करते थे।

अपने बेटी नरगिस के साथ जद्दनबाई (दायें)

ये सस्ती कला के केन्द्र नहीं थे बल्कि उच्च स्तरीय मुस्लिम संस्कृति का एक नमूना थे। कुछ शरीफ़ घरानों में तो यह कोठे उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा और सौंदर्य भावना के प्रतीक थे। कोठेवालियों को भी गर्व होता था कि वे आश्रय में हैं। अपने आश्रयदाताओं की इजाज़त के बगैर वे बाहर की दुनिया में कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं करती थीं। आश्रयदाता भी सिर्फ़ संगीत सुनते थे और नृत्य देखते थे। बाद के काल में इन कोठों का स्तर गिर गया और वह विलासता के अड्डे बन गए।

जद्दनबाई भी इसी माहौल में पैदा हुईं। गाने और गैर मामूली प्रतिभा देखकर उनकी मां ने एक सुसंस्कृत कश्मीरी परिवार के कोठे पर उन्हें रख दिया। निसंदेह यह मोतीलाल नेहरू का परिवार था। कहा जाता है अनवर हुसैन के बेटे सरवर ने अपने परिवार के बुज़ुर्गों से सुना था कि जद्दनबाई ने जवाहरलाल नेहरु के हाथ पर राखी बांधकर उन्हें राखी-भाई बनाया था। यहां जद्दनबाई का व्यक्तित्व एक दृढ़ विश्वासी और सजग लड़की के रूप में निखर उठा। छोटी उम्र से ही अपनी प्रतिभा को मांझने और निखारने का उनमें ज़बरदस्त जज़्बा था। वह गौहरजान की शिष्या बनीं जो उस युग की नामीगिरामी गायिका थीं। जद्दनबाई ने

उनका उतार चढ़ाव देखा और उससे सबक हासिल किया। बाद में वह इलाहबाद से बनारस चली गईं। उस वक्त उनके दिमाग में एक ही ख्याल था कि उन्हें ठुमरी में प्रवीणता प्राप्त करनी है। इसमें सफलता ने उनके कदम चूमें।

जद्दनबाई ने निश्चय किया कि वह गायिका को कोठे की सीमित परिधि से निकाल कर उसे एक विस्तृत आकाश देंगी और भाग्यवश उन्हें यह अवसर भी मिल गया। इलाहाबाद से गायकों का एक ग्रुप कोलकाता ले जाया गया। इनके साथ एक और छोटा ग्रुप था जिसमें जद्दनबाई भी थीं। यहां से जद्दनबाई की ज़िंदगी ने एक नया मोड़ लिया। यहां के.एल. सहगल ने उनकी प्रतिभा को पहचान कर कहा कि वह आम कोठेवाली नहीं हैं...

जद्दनबाई की ज़िंदगी में दाखिल होने वाले दूसरे व्यक्ति उत्तमचंद मोहनचंद थे जो मोहन बाबू के नाम से जाने जाते थे। वह इंग्लैण्ड में डॉक्टरी की शिक्षा प्राप्त करने के लिए जा रहे थे। लेकिन जद्दनबाई के इश्क में ऐसे गिरफ़्तार हुए कि डॉक्टरी का इरादा छोड़कर हमेशा के लिए उनसे बंध गए। मोहन बाबू के परिवार ने ऐसी बहू को स्वीकारने से इंकार कर दिया जो अब सत्ताईस साल की थी और सत्रह साल की उम्र में उसकी पहली शादी हो चुकी थी। वह दो बेटों की मां भी थी। लेकिन मोहन भाई का प्रेम इतना सच्चा था कि कोई चीज़ उनके रास्ते में नहीं आई। जद्दनबाई के लिए उन्होंने ब्राह्मण होते हुए भी इस्लाम धर्म स्वीकार किया और अब्दुल राशिद नाम ग्रहण किया। इस प्रकार 1928 में वे शादी के बंधन में बंध गए।

मोहन बाबू के घरवालों ने उनसे हर रिश्ता तोड़ लिया। बम्बई की फ़िल्मी दुनिया में इस अनोखे प्यार की कहानी बहुत प्रसिद्ध हुई। बाद में मोहन बाबू ने लखनऊ में मेडिकल की शिक्षा की शुरूआत की लेकिन जल्द ही उन्होंने डॉक्टर बनने का इरादा हमेशा के लिए छोड़ दिया। ज़िन्दगी का हर लम्हा वह जद्दनबाई के साथ गुज़ारना चाहते थे। उन्होंने जद्दनबाई को उनके करियर के लिए प्रोत्साहित किया। जब उनके बेटी पैदा हुई तो उन्होंने उसका नाम फातिमा अब्दुल राशीद रखा। पिता के लिए वह तेजस्वरी मोहन थी। अपनी बेटी से उन्हें गहरा लगाव था और बेटी भी उनसे बहुत प्यार करती थी।

मोहन बाबू ने जद्दनबाई को घर की सुरक्षा और आत्मीयता प्रदान की। सहगल ने उन्हें बताया कि वह संगीत के पंखों पर परवाज़ करके पूरी दुनिया को जीत सकती हैं। जब पंजाब के एक ऑफिस में काम करने वाला एक व्यक्ति शोहरत हासिल कर सकता है तो वह क्यों नहीं कर सकतीं? अगर सितारों की दुनिया को वह अपनी आवाज़ के सहारे जीत सकती है तो अपने क़दम क्यों रोकें? उस वक्त बोलती फ़िल्मों ने एक नई राह खोल दी थी। 1930 में वह लाहौर आ गईं। उसका संगीत बेहद पसन्द किया जाता था। यहां वह ग्रामोफोन की कोलंबिया कंपनी से जुड़ गईं और उनकी गज़लों ने धूम मचा दी। लाहौर में वह फ़िल्मों में अभिनेत्री भी बनीं और अपने खुद के गाने भी गाए। 'इंसान और शैतान', 'राजा गोपीचंद', 'सेवा सदन' (1934) उनकी यादगार फ़िल्में हैं।

जद्दनबाई बहुत सुंदर नहीं थीं लेकिन उनके संगीत ने उन्हें बॉक्स ऑफिस पर सफलता दिलवाई। जद्दनबाई की गैरमामूली लगन और महत्वकांक्षा 1934 में उन्हें बम्बई ले आई। यहां उन्होंने अपनी 'संगीत फ़िल्म' कंपनी बनाई और 'तलाशे हक़' 1935 में रिलीज़ हुई। यह फ़िल्म लाहौर

की फ़िल्मों की तरह हिट तो नहीं हुई लेकिन दो कारणों से इतिहास निर्मित किया।

वह भारत की पहली महिला संगीत निर्देशक थीं जिन्होंने अपनी फ़िल्म के लिए स्वयं संगीत तैयार किया था। बाद में नर्गिस यह बात बड़े गर्व से लोगों को बताती थीं। इस फ़िल्म में पहली बार नर्गिस ने बाल कलाकार की भूमिका निभाई। मरीन ड्राइव जैसे शानदार इलाके में उन्होंने घर लिया।

जद्दनबाई बहुत ही दरिया दिल औरत थीं। फ़िल्मी दुनिया में ज़रूरतमंदों की मदद करने के लिए वह बेहद मशहूर थीं। उनके परिवार में सिर्फ़ पांच लोग थे लेकिन हर समय 20-25 लोग उनके घर पर मौजूद होते थे जिनके लिए खानासामा खाना तैयार करते थे। जद्दनबाई के पास एक मानवीय दृष्टि और संवेदनशील हृदय था। अपने प्रगतिशील विचारों के चलते उन्होंने 1942 में आज़ादी की जंग में खुफ़िया रेडियो स्टेशन चलाने में भी लोगों की मदद की।

उनके बेटे अख्तर हुसैन और अनवर भी फ़िल्मी दुनिया में अपनी पहचान फ़िल्म निर्माता और अभिनेता के रूप में स्थापित कर रहे थे। शम्मी कपूर का कहना था कि जद्दनबाई के बोलने का ढंग और गालियां देने का अंदाज़ उन्हें एक कठोर व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत करता था लेकिन भीतर से वह बहुत ही कोमल और दूसरों का ख्याल करने वाली महिला थीं।

वह स्वयं शिक्षित नहीं थीं लेकिन मोहन बाबू और वह दोनों इस बात के लिए पूरी तरह सहमत थे कि अपनी बेटी को पढ़ाना बहुत ज़रूरी है। नर्गिस पढ़ने में होशियार थी। वह डॉक्टर बनना चाहती थी। जद्दनबाई भी निर्माताओं से उसे दूर ही रखती थीं। लेकिन महबूब खान ने जब अपनी फ़िल्म के लिए नर्गिस को हिरोइन के रूप में लेना चाहा तो जद्दनबाई इंकार नहीं कर सकीं और यहीं से नर्गिस की ज़िंदगी एक नई राह पर निकाल आई।

8 अप्रैल 1941 को जद्दनबाई की ज़िंदगी का सितारा हमेशा के लिए डूब गया लेकिन एक तवायफ़ ने किस तरह अपनी सीमित परिधि से निकाल कर बम्बई नगरी की फ़िल्मी दुनिया में अपनी एक पहचान और जगह बनाई यह अपनी मिसाल आप है। जद्दनबाई ने सिद्ध कर दिया कि नारी अबला नहीं सबला है।

नग़मा जावेद मलिक, *लेखिका व कवयित्री हैं।*